नवंबर १९९१ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

न भजे पापके मित्ते, न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे, भजेथ पुरिसुत्तमे॥

न पापी मित्रों की संगत करे, न अधम पुरुषों की। संगति करे कल्याणमित्रों की, उत्तम पुरुषों की।

– धम्मपद ६-३.

आत्म कथन

कैसे सज्जन लोग!

ऊ छां ठुन

भगवान के सम्पर्क में आने के पहले सारिपुत्र पंचर्गीय भिक्षु अर्हंत अश्वजित से मिले। उन्हीं के मुँह से पहले पहल शुद्ध धर्म के मांगलिक बोल सुने –

ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसं च यो निरोधो, एवंवादी महासमणो॥

और इन्हीं शब्दों से सारिपुत्र के अन्तर्तम में अनित्य का बोध जागा। स्त्रोतापन्न अवस्था प्राप्त हुई। भदन्त अश्वजित के अँगुली-निर्देश से ही सारिपुत्र भगवान की शरण गए और कृतकृत्य हुए।

धर्म सेनापति का गौरवान्वित पद पाकर भी सारिपुत्र भदन्त अश्वजित के उपकार को कभी नहीं भूल पाए और नित्य प्रति मन ही मन उनकी वंदना करते रहे।

यद्यपि उन महान अर्हंतों से कोई तुलना नहीं फिर भी यह सच है कि मेरा मन बर्मा के सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश ऊ छां ठुन के उपकार को कभी नहीं भूल सकता, जिसके अँगुली-निर्देशन के कारण मैं गुरुदेव ऊ बा खिन के सम्पर्क में आया और मुझे मुक्ति का यह कल्याणकारी मार्ग मिला।

ऊ छां ठुन जब बर्मा का अटॉर्नी जनरल था, तब से मैं उससे परिचित था। यह परिचय धीरे धीरे घनिष्टता में बदलता चला गया। वह सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश हुआ। बुद्धशासन समिति का महामंत्री और "वर्ल्ड फेलोशिप ऑफ बुद्धिस्ट संघ" का अध्यक्ष बना। उसके बुद्धशासन समिति के मंत्रित्व काल में ही ऐतिहासिक **छठी संगायन** का पुण्यकार्य सम्पन्न हुआ। उन्हीं दिनों उसके साथ संगायन में छोटी मोटी सेवा करने का अवसर मुझे मिला। कुछ एक प्रबुद्ध भिक्षुओं से सम्पर्क भी हुआ और बुद्धवाणी के कुछ बोल भी कानों में पड़े।

इन्हीं दिनों मैं माइग्रेन के असह्य रोग से पीड़ित था। हर पन्द्रहवें दिन माइग्रेन का तेज आक्रमण होता और कोई दवा काम नहीं करती। डॉक्टरों ने मर्फिया की सुई देनी शुरू कर दी। डर था कि कहीं मर्फिया का व्यसन न लग जाय। बर्मा के बड़े से बड़े डॉक्टरों के पास और कोई उपचार नहीं था। अतः निर्णय किया विदेशों में जाकर इसका इलाज करवाऊं।

स्विटजरलैंड, जर्मनी, इंग्लैंड, अमेरिका और जापान इलाज के लिए गया। लगभग इन सभी देशों के बर्मी दूतावासों में ऊ छां ठुन का कोई न कोई मित्र था। राजदूत हो या प्रथम सचिव या सेना सचिव। मुझे उन पर परिचय पत्र मिले। ऊ छां ठुन मेरे रोग से चिंतित था। उसके परिचित लोगों ने मेरी खूब मदद की। अच्छे से अच्छे डॉक्टरों का अप्वाइंटमेंट दिलवा दिया।

महीनों इलाज कराकर लौटा तो देखा कोई लाभ नहीं हुआ। माइग्रेन का रोग मिटना तो दूर मर्फिया से भी छुटकारा नहीं मिला। अन्य कोई पेनकिलर दवा काम नहीं आयी।

बड़ी निराशा हुई। ऐसे समय मित्र ऊ छां ठुन ने सुझाव दिया कि सयाजी ऊ बा खिन से मिलूं और उनके एक दस दिन के साधना शिविर में बैठूं। अवश्य ही लाभ होगा। भगवान बुद्ध ने तो जनम जनम के दुःखों से छुटकारा पाने का मार्ग दिया है। इस मार्ग पर चल कर तो देखो। हो सकता है इस शारीरिक दुःख से मुक्ति पा लो।

आगे जो कुछ हुआ उसने जीवन में एक नयी मोड़ दे दी। कितनी सुखद मोड़! कितनी कल्याणकारिणी मोड़! माइग्रेन के सिरदर्द का अभिशाप मेरे लिए मंगलमय वरदान बन गया।

अच्छे मित्र की सत्संगत कल्याणकारिणी होती है। अच्छा मित्र वह जो सद्धर्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे, सहायक बने।

इस माने में ऊ छां ठुन मेरा अच्छा मित्र बना, सच्चा मित्र बना। उसके उपकार को कैसे भूल सकता हूं भला? धर्मदूत की चारिका के पुण्य में उसे भागीदार बनाकर मन सदैव बड़ा प्रसन्न होता है।

आत्म कथन

कैसे सज्जन लोग!

डो म्या सैं

मैं गुरुदेव के चरणकमलों में उपस्थित हुआ। उन्होंने समझाया कि भगवान का यह कल्याणकारी मार्ग तो भव भव के दुःखों से छुटकारा पाने के लिए है। सिरदर्द जैसे शारीरिक उपचार के लिए इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। एक उपफल स्वरूप इस रोग से मुक्ति हो जाए तो हो जाए। पर यह साधना का मुख्य उद्देश्य न बन जाए। मुझे उनकी यह बात बहुत भाई। सिरदर्द के इलाज को एक ओर छोड़कर चित्त शुद्धि के ऊंचे अध्यात्म का लक्ष लेकर मैं उनके एक शिविर में शामिल हुआ और दत्त-चित्त से काम करने लगा।

पहला दिन बहुत अच्छा बीता। पर दूसरे दिन एक बहुत बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई, जिसने मुझे शिविर छोड़ कर भाग जाने को प्रेरित किया। हुआ यह कि उन दिनों शिविरों में आनापान की साधना के प्रथम तीन दिनों तक साधकों को परस्पर बातचीत करने की छूट थी। अवकाश के समय एक दूसरे के अनुभवों पर साधक परस्पर वार्तालाप कर लिया करते थे। मैंने भी अपने एक साथी साधक के मुँह से सुना कि ध्यान करते हुए उसे अँधेरे शून्यागार में किसी प्रकार का प्रकाश दिखाई दिया।

यह सुनते ही मेरे मन में बड़ी निराशा हुई। पहले दिन की साधना बहुत अच्छी हो रही थी। आते जाते सांस पर ध्यान टिकता

था। नासिका के द्वारों पर पहले ही दिन बहुत स्पष्ट संवेदना भी महसूस होने लगी थी। पर मैं जिस परंपरा में जन्मा और पला वहां तो ध्यान का अंतिम लक्ष्य ही प्रकाश दिख जाना है। जिसे दिव्य ज्योति के दर्शन हो जांय उसे और क्या चाहिए? मेरा मन उदासी से भर गया। साथी को दिव्य ज्योति के दर्शन हो गए और मुझे नहीं हुए। अब गुरुदेव ने जो काम करने का आदेश दिया वह छूट गया। मन दिव्य ज्योति के दर्शन के लिए बेचैन हो उठा।

उस दिन दोपहर होते होते और एक साथी साधक ने कह दिया कि उसे ध्यान के समय कानों में कुछ ध्वनि सुनाई देने लगी। वैसी ही जैसी समुद्र की लहरों की गर्जना होती है। अरे! यह तो अनहतनाद की दिव्य ध्वनि। मुझमें और हीन भावना जागने लगी। ऐसे अनुभव तो संत साधकों को ही होते हैं। अब मुझे सांस और संवेदना को देखना जरा भी न सुहाता। साधना बिल्कुल नहीं हो रही थी। मन पराजय की भावनाओं में डूबा जा रहा था।

पूरी दोपहर मन अत्यंत ही कुंठित रहा। एक विचार बार बार मन में हावी होने लगा। पश्चिम के एक संत ने कहा है कि 'सूई के छेद में से ऊंट का निकल सकना आसान है परंतु स्वर्ग के दरवाजे में से किसी धनवान का निकल सकना नामुमकिन है।' और मैं एक धनवान व्यक्ति! स्वर्ग के दरवाजे में प्रवेश पाने का निरर्थक प्रयत्न कर रहा हूं। कैसा असम्भव काम! ये जो मेरे साथी साधक हैं इन्हें सफलता मिलनी स्वाभाविक है क्योंकि ये सब के सब भले लोग हैं जिनका चित्त सरल है, ऋजु है। सदा धन के पीछे दौड़नेवाले मेरे जैसे व्यापारी की सी कुटिलता इनके मन में नहीं है।

शाम होते होते निश्चय कर लिया कि मैं साधना के योग्य बिल्कुल नहीं हूं। अतः घर लौट जाना चाहिए। क्यों समय खराब करूं? हर शाम ५ बजे घर से कार आती थी, जो धुले हुए कपड़े तथा अन्य आवश्यक सामान ले आती थी। मैं जानता था कि गुरुदेव मुझे जाने की आज्ञा नहीं देंगे। परन्तु मैंने किसी भी प्रकार निकल भागने का निर्णय कर लिया था। आखिर यहां रहकर क्या करूं? न दिव्य ज्योति, न दिव्य नाद।

मैं अपने कमरे में गया और सामान पैक करने लगा। परन्तु बड़े सौभाग्य की बात हुई। एक साथी साधिका ने मेरे रंग ढंग देख लिए। वह बड़ी दयालु थी। रंगून विश्व विद्यालय में प्रोफेसर थी। नाम था डो म्या सैं। उसे समझते देर नहीं लगी कि मैं बहुत उखड़ा हुआ हूं। बड़े करुण चित्त से वह मुझे आश्वासन देने आयी। मैंने बता दिया कि मैं शिविर छोड़ रहा हूं क्योंकि मुझे न कोई दिव्य ज्योति दिखी, न कोई दिव्य शब्द सुना।

उसने बड़े प्यार से समझाया, "तुम्हें पहले दिन ही होंठ पर इतनी स्पष्ट संवेदना मिलने लगी थी जो कि बहुत कम लोगों को मिलती है। सयाजी तो तुम्हारी प्रगति से बहुत प्रसन्न हैं। अब इन प्रकाश आदि को लेकर क्यों निराश हो रहे हो? इन्हें भुलाओ और गुरुजी ने सांस और संवेदनाओं को देखने का जो काम बताया है उसे ही पूरा महत्त्व दो। बजाय शिविर छोड़ने के एक दिन और काम करके देखो।"

अपनी परंपरागत मान्यताओं में उलझा हुआ व्यक्ति यथाभूत सत्य की साधना नहीं कर सकता। परन्तु मैंने कृपालु प्रोफेसर की बात मान ली और दिव्य ज्योति और अनहत नाद की कामनाओं को एक ओर छोड़कर गुरुजी के बताए हुए काम में लग गया। सांस का आवागमन और नाक के नीचे संवेदना। मन एकाग्र होने लगा और कुछ समय के बाद ही देखा था कि उस अँधेरे शून्यागार में एक सितारे की सी तेज रोशनी प्रकट हुई और तत्पश्चात् अन्य अतीन्द्रिय अनुभूतियां भी होने लगीं। अरे! मैं इन्हीं को पाने के लिए तो लालायित था। लालायित था इसलिए नहीं पा रहा था। परन्तु अब तो मैंने दृढ़ निश्चय किया कि मुझे सांस और संवेदनाओं को ही महत्त्व देना है। अन्य किसी आलंबन को नहीं। यही तो गुरुदेव का आदेश था।

जब गुरुदेव को पता चला कि मैं किस प्रकार भागते-भागते बचा तो वे बहुत प्रसन्न हुए। मैं उस दयालु महिला प्रोफेसर डो म्या सैं का सदा के लिए कृतज्ञ हो गया। मेरे लिए वह दैवी रक्षिका साबित हुई। यदि वह मुझे भागने से न रोकती तो मैं मनुष्य जीवन के सब से कीमती धर्म रत्न से वंचित रह जाता और शायद समझ भी नहीं पाता कि मैंने क्या खो दिया है।

यही कारण है कि यहां शिविरों में मैंने प्रथम नौ दिनों तक पूर्ण मौन रहने पर बल दिया, ताकि साधक एक दूसरे की अनुभूतियों को सुनकर विचलित न हो जाएं। और यही कारण है कि जब कोई व्यक्ति शिविर छोड़कर भागना चाहता है तो मुझे अपना यह अनुभव याद आ जाता है। सोचता हूं कि इस समय यह व्यक्ति नहीं समझ रहा कि वह क्या खोने जा रहा है। यथासम्भव प्यार और करुणा से उस व्यक्ति को रोकता हूं और काम करते रहने के लिए प्रोत्साहित करते रहता हूं, यह जानकर कि रुक जाएगा तो कितना बड़ा धर्मकोष प्राप्त कर लेगा जो इसके जीवन को सुखी बना देगा। अन्यथा इस खजाने से सदा के लिए वंचित रह जाएगा। जो मेरा कहना मानकर रुक जाते हैं वे शिविर समापन पर अपनी कृतज्ञता प्रगट करने आते हैं।

मैं भी तो डो म्या सैं के प्रति चिरकृतज्ञ ही रहूंगा।

इस घटना के पूर्व मैं डो म्या सैं को केवल नाम से जानता था। वह बर्मा की उच्चकोटि की विदुषियों में से एक थी। विदेशों के विश्वविद्यालय उसे बार बार विभिन्न विषयों पर प्रवचन देने के लिए बुलाया करते थे। उसकी एक पुस्तक भी पहले पढ़ी थी। शिविर में उससे मिलना हुआ जो कि आगे जाकर घनिष्टता में बदलता गया। वह गुरुजी की परम प्रिय शिष्या थी। साधना की बहुत ऊंचाईयां उसने प्राप्त की थी। जब चाहे तब, जितनी देर के लिए चाहे उतनी देर के लिए निर्वाणिक अवस्था में जा सकती थी। हवाई जहाज की यात्रा उसके अनुकूल नहीं थी। विशेषतः तब जब हवाई जहाज ऊपर ऊठता हो अथवा जब नीचे उतरता हो। अब गुरुजी के आदेश के अनुसार हवाई जहाज जैसे ही उड़ना आरंभ करे वह इंद्रियातीत निरोध अवस्था में चली जाए और इस संकल्प से चली जाए कि जैसे ही ऊपर उठकर जहाज सीधा उड़ने लगे तो इस निर्वाणिक अवस्था में से निकल आए। इसी प्रकार जैसे ही हवाई जहाज उतरने लगे तो भी ऐसा ही संकल्प ले कि धरती को छू जाय उसके बाद ही निर्वाणिक अवस्था से बाहर निकले। यह साधिका अनेकों के लिए प्रेरणा की स्त्रोत बनी।***